आचार्यश्री महाश्रमण : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

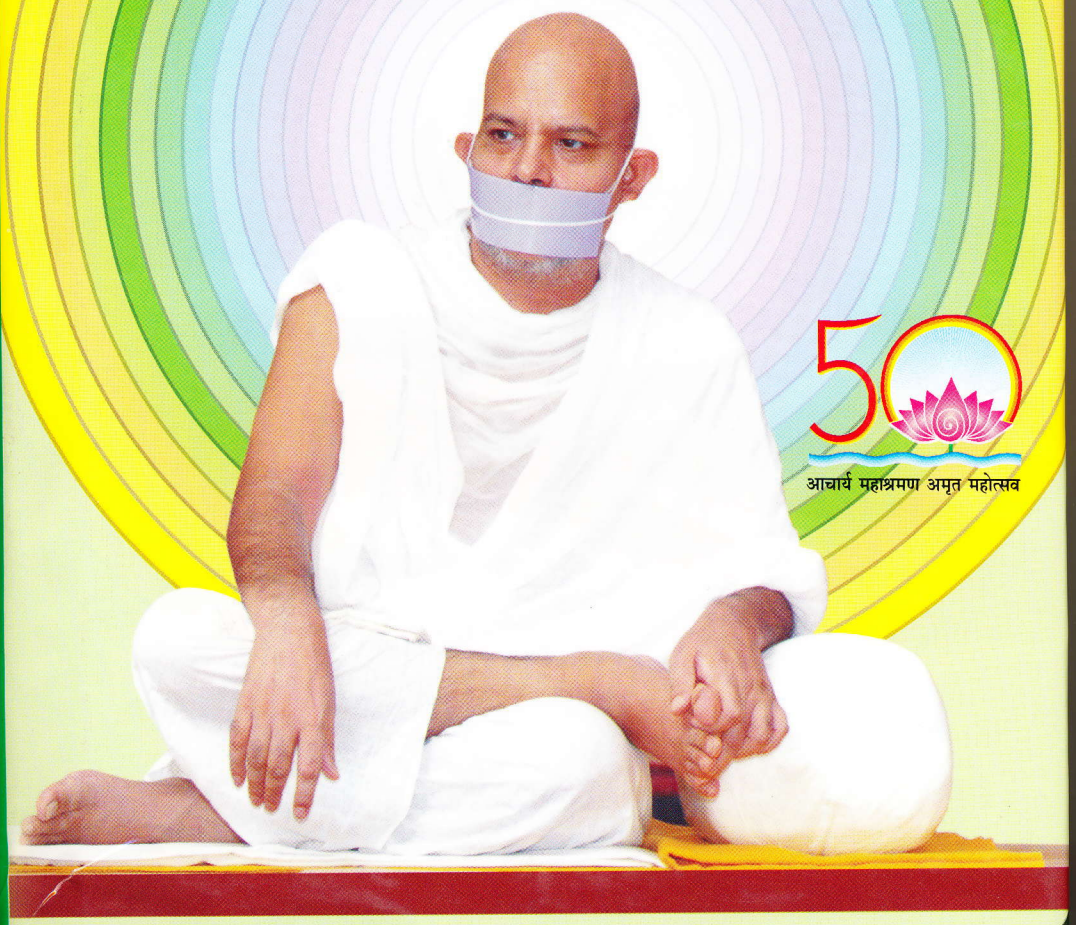

50
आचार्य महाश्रमण अमृत महोत्सव

संपादक – डॉ. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी 'रत्नेश'

अनुक्रम

क्र. विषय	लेखक	पृष्ठ
01. आचार्यमहाश्रमणसप्तकम्	प्रो. दामोदर शास्त्री	01
02. सफलता की सूक्ति : सुविधावाद से मुक्ति	समणी चारित्रप्रज्ञा	04
03. एक विरल सत्यान्वेषक आचार्य महाश्रमण	प्रो. बच्छराज दूगड़	07
04. विश्वविद्यालय के अनुशास्ता आचार्यश्री महाश्रमण	प्रो. जे.पी.एन. मिश्रा	14
05. अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री महाश्रमण	डॉ. आनंदप्रकाश त्रिपाठी	20
06. सत्यशोधक आचार्यश्री महाश्रमण	समणी प्रतिभाप्रज्ञा	26
07. समत्वयोगी आचार्यश्री महाश्रमण	डॉ. समणी ऋजुप्रज्ञा	29
08. प्रखर प्रवचनकार आचार्यश्री महाश्रमण	डॉ. समणी मल्लिप्रज्ञा	36
09. भविष्योन्मुखी शिक्षा : आचार्यश्री महाश्रमण की दृष्टि	डॉ. बी.एल. जैन	46
10. वन्दनीया आचार्यमहाश्रमणाः	पं. विश्वनाथ मिश्र	53
11. प्रश्नाकुल सत्यान्वेषी आचार्य महाश्रमण	डॉ. जिनेन्द्र जैन	55
12. तल से शिखर तक आचार्य महाश्रमण	नेपाल पवन गंग	61
13. श्रेष्ठताओं के समवाय आचार्य महाश्रमण	डॉ. शान्ता जैन	63
14. विराट् व्यक्तित्व के धनी आचार्य महाश्रमण	डॉ. जुगलकिशोर दाधीच	67
15. आचार्यश्री महाश्रमण का संस्कृत साहित्य	डॉ. समणी संगीतप्रज्ञा	74
16. वैश्विक मानवता एवं नैतिकता के उन्नायक आचार्य महाश्रमण	डॉ. योगेश कुमार जैन डॉ. श्वेता जैन	79
17. समाज सुधारक आचार्यश्री महाश्रमण	डॉ. विजेन्द्र प्रधान	86
18. महातपस्वी आचार्य महाश्रमण	डॉ. समणी आगम प्रज्ञा	95
19. आचार्यश्री महाश्रमण के चिंतन में सकारात्मक सोच	रमेशदान चारण	100
20. महाउपकारी आचार्य महाश्रमण	समणी रोहितप्रज्ञा	108

आचार्यश्री महाश्रमण का संस्कृत साहित्य

–डॉ. समणी संगीतप्रज्ञा

संस्कृत भाषा का साहित्य अपनी प्राचीनता, विशालता, व्यापकता, विविधता, गम्भीरता, उदात्तता और लालित्य की दृष्टि से विश्व की किसी भी भाषा-विशेषकर प्राचीन भाषा के साहित्य से महान् और उच्च है, इस तथ्य को सभी संस्कृतविद्, प्राच्य और पाश्चात्य विद्वान् सर्वात्मना स्वीकार करते हैं। यह भारतीय मेधा का सर्वोत्तम प्रतिनिधि साहित्य है। विश्व में भारत का जो भी महत्त्व और गौरव है, उसके मूल में उसकी आध्यात्मिकता आदि अन्य विशेषताओं के साथ ही सुरभारती का यह महान् साहित्य भी है। भावोद्वहन की विशेष क्षमता, शाब्दिक प्रांजलता व सामरस्य, वैयाकरणी उर्वरता, मार्मिक ध्वनिमयता आदि अनेक ऐसे कारण हैं, जिनसे संस्कृत ने अपने विद्वत्समुदाय को आकृष्ट किए रखा है।

जैन परम्परा में संस्कृत का समादरपूर्ण स्थान रहा है। उत्तरवर्ती जैन वाङ्मय की ओर दृष्टिपात करें तो पाते हैं कि जैन आचार्यों एवं विद्वानों ने संस्कृत-साहित्य की श्रीवृद्धि करने में बहुत बड़ा योगदान दिया। इनके व्याकरण, न्याय, अलंकार, योग, ज्योतिष, वैद्यक, कथा-कोश आदि का साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में गरिमापूर्ण स्थान है।

जैन आगमों की भाषा अर्धमागधी प्राकृत है। तीर्थंकर उसी में तत्त्व प्ररूपण करते रहे हैं। अतएव प्राकृत के साथ एक ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक पवित्रता जुड़ी है। पर साथ ही साथ जैन मनीषी संस्कृत को भी गौरव देने में कभी विमुख नहीं रहे। **'सक्कयं पागयं चेव पसत्थं इसिभासियं'**–संस्कृत और प्राकृत प्रशस्त ऋषि भाषित है–यह उक्ति इस ओर स्पष्ट संकेत करती है। परिणामतः जैन विद्वानों की ओर से संस्कृत वाङ्मय को सर्वतोमुखी विकास देने का अनवरत प्रयास रहा है। आचार्य सिद्धसेन, समन्तभद्र, उद्योतन, जिनसेन, सिद्धर्षि, हेमचन्द्र आदि की रचनाएँ वस्तुतः संस्कृत वाङ्मय के गौरव हैं।

तेरापंथ में संस्कृत का बीजबपन जयाचार्य ने किया था और उसका अंकुरण मघवागणी ने। वटवृक्ष के रूप में उसे शतशाखी विस्तार देने का कार्य कालूगणी ने किया। कहा जाता है कि भगीरथ की घोर तपस्या के द्वारा भारत भूमि पर गंगा का अवतरण हुआ। तेरापंथ की भूमि पर संस्कृत की गंगा का अवतरण आचार्यश्री कालूगणी की घोर तपस्या का सुफल है। हम उन्हें तेरापंथ के भगीरथ कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। आचार्य बनने के पश्चात् एक बार स्वप्न में उन्हें पुष्पों और फलों से लदा हुआ एक विशाल वृक्ष दिखाई दिया। उन्होंने अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा–"अब संघ में संस्कृत का वृक्ष अवश्य ही पुष्पित और फलित होगा।" उनका स्वप्न शीघ्र ही फलीभूत हुआ और उनके कथन की सत्यता को प्रमाणित कर गया।

अनेक विद्यार्थी मुनि संस्कृत पढ़ने लगे। कालूगणी स्वयं उन्हें पढ़ाते। निरुत्साहितों में उत्साह भरते। पढ़े हुए पाठों की समय-समय पर परीक्षा लेते। इस तरह वे संघ में संस्कृत के सर्वतोमुखी प्रगति के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहा करते थे। वे प्रायः एक दोहा पढ़ा करते थे–

खानपान चिन्ता तजै, निश्चय मांडे मरण।
घो-ची-पू-ली करतो रहै, जद आवै व्याकरण।।

अर्थात् जब तक कोई खानपान तक की चिन्ताओं को छोड़कर केवल अध्ययन के पीछे ही अपना जीवन झोंक देता है तथा घोटने (रटने), चितारने (रटे हुए पाठ का पुनावर्तन करने), पूछताछ करने और लिखने में ही निरन्तर लगा रहता है, तब कहीं वह संस्कृत व्याकरण को हृदयंगम करने में सफल होता है। उनकी वात्सल्य पूर्ण प्रेरणाओं ने अनेक मुनियों को संस्कृत अध्ययन की ओर उन्मुख किया।

इसके पश्चात् गणाधिपति तुलसी के आचार्य काल में तेरापंथ धर्मसंघ ने संस्कृत वाङ्मय को विभिन्न कृतियों के माध्यम से योगदान दिया। आचार्य तुलसी के पट्टधर बने महाप्रज्ञ। आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने संस्कृत के ज्ञान प्राप्ति में अनुभव बताते हुए कहा था कि "मैं बहुत छोटे गांव (टमकोर-राजस्थान) में

जन्मा था। उस जमाने में वहां पढ़ाई का कोई खास प्रबंध नहीं था। मैं और मेरे कुछ साथी गुरुजी की पाठशाला में पढ़ते थे—न हिन्दी, न संस्कृत, केवल पहाड़े। मुनि बनते ही पढ़ाई का काम शुरू हुआ। मैं प्राकृत और संस्कृत के ग्रंथ पढ़ने लगा। पूज्य कालूगणी के निर्देशानुसार गणाधिपति मुनि तुलसी मेरे अध्यापक बने। उस समय अध्यापन परिपाटी में ग्रंथों को कण्ठस्थ करने पर अधिक बल था। मैंने कुछ ही वर्षों में अनेक ग्रंथ कण्ठस्थ कर लिए पर समझने की क्षमता विकसित नहीं हुई। कुछ श्लोक बनाए। अब मुनि तुलसी आचार्य बन चुके थे। उनके आचार्य-पदारोहण का दूसरा समारोह था। उस समय वे श्लोक मैंने पढ़े। मंत्री मुनि मगनलाल स्वामी ने मुझे बहुत प्रोत्साहित किया। उस प्रोत्साहन से संस्कृत में लिखने की रुचि और बढ़ गई। फिर कुछ ऐसा बना कि मैं प्रायः संस्कृत में ही लिखने लगा।''

तेरापंथ के वर्तमान आचार्य आचार्यश्री महाश्रमण भी पूर्ववर्ती आचार्यों की अभिप्रेरणा एवं मार्गदर्शन से संस्कृत के गौरव को निरन्तर बढ़ाने में रत हैं। आचार्यश्री महाश्रमण ने मुनि अवस्था में मुनिश्री रूपचन्द की प्रेरणा व मुनिश्री मननकुमार के श्रम से संस्कृत भाषा का अच्छा अध्ययन किया। इससे पूर्व मुनि श्री सुमेरमल, मुनि मुदितकुमार को (आचार्यश्री महाश्रमण का पूर्व नाम) संस्कृत पढ़ाते थे। पण्डित रामकुमार ने संस्कृत व्याकरण कालु कौमुदी की साधनिका करवाया। कुछ वर्षों में उन्होंने संस्कृत भाषा का गम्भीर अध्ययन कर लिया। वे संस्कृत भाषा में धाराप्रवाह बोलने लगे और लिखने भी लगे। अध्ययनकाल में मुनि मुदितकुमार ने संस्कृत भाषा में कुछ कहानियाँ लिखीं, जिन्हें आज 'शेमुषी' नामक ग्रंथ में पढ़ा जा सकता है। 'शेमुषी' ग्रंथ को पढ़कर आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने कहा था—युवाचार्य महाश्रमण वैयाकरणों में प्रमुख स्थान को सुशोभित कर रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक के अध्ययन से मेरे इस आशय की सहज पुष्टि हो जाएगी। उन्होंने विद्यार्थियों की प्रतिभा के विकास के लिए इस 'शेमुषी' नामक ग्रंथ का प्रणयन किया है। इस ग्रंथ में अनेक प्रयोग हैं, जो विद्यार्थियों के ज्ञान को बढ़ाने में सक्षम हैं।

शेमुषी ग्रंथ की विशेषताएँ

विषयवस्तु—शेमुषी नामक ग्रंथ का प्रणयन आचार्यश्री ने मुख्यतः विद्यार्थियों के संस्कृत भाषा के अध्ययन के लिए किया है। प्रत्येक कहानी के प्रारम्भ में कहानी की विषयवस्तु को प्रस्तुत किया है तथा कहानी के अन्त में सार रूप में सरल एवं सरस श्लोकों को उद्धृत किया है। श्लोकों के माध्यम से कथाओं के विषय स्वतः गम्य हो जाते हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ में एक ही कहानी में एक शब्द के अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया है। यथा ग्रंथ की दूसरी कथा 'कषाय मुक्ति : किल मुक्तिरेव' में पुत्र शब्द के लिए छः पर्यायवाची शब्द प्रयोग किये हैं, यथा—सूनुः, वत्स, अङ्गजः, प्रसूः, दारकः, सुतः। अन्य एक पाठ में राजा शब्द के लिए पाँच पर्यायवाची शब्द प्रयोग हैं—पार्थिवः, महिपालः, महाराज, नृपतिः, पृथ्वीपालः। इस प्रकार एक ही शब्द के लिए अनेक पर्यायवाची शब्दों से विद्यार्थियों को सहज ही शब्दकोष का ज्ञान हो जाता है।

'शेमुषी' ग्रंथ में कुल 40 कहानियाँ हैं, जिनमें प्रथम से लेकर अठारहवें तक में शिक्षाप्रद एवं आध्यात्मिक कहानियाँ हैं। शिक्षाप्रद कहानी का एक श्लोक मननीय है—

उद्योगे नास्ति दारिद्रयं, जपतो नास्ति पातकम्।
मौनिनः कलहो नास्ति, नास्ति जागरिते भयम्।।

19वीं कथा पार्श्वप्रभु के जीवन चरित्र से संबंधित है। 20-23वीं में भगवान महावीर का जीवनवृत्त वर्णित है तथा आगे की कथाओं में (24-40) तेरापंथ धर्मसंघ के गौरवशाली आचार्यों के जीवन वर्णित हैं।

इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रंथ का पारायण करने से निश्चित ही संस्कृत भाषा का तो विकास होता ही है, आध्यात्मिक उन्नयन का भी मार्गदर्शन प्राप्त होता है।

'शेमुषी' ग्रंथ के अतिरिक्त भी आचार्यश्री महाश्रमण ने समय-समय पर अनेक छोटी-बड़ी रचनाएँ की, जिनका पूर्ण रूप 'शिक्षा सुधा' नामक ग्रंथ के रूप में देखा जा सकता है। यह ग्रंथ संस्कृत भाषा का सरलतम ग्रंथ है। इस ग्रंथ

के बारे में आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने कहा—कोई भी मतिमान मनुष्य 'शिक्षा सुधा' को पढ़कर यह नहीं कह सकता कि संस्कृत भाषा कठिन है।

'शिक्षा सुधा' पूर्ण रूपेण पद्यात्मक है। इस ग्रंथ में सर्वप्रथम 'आचार्य महाप्रज्ञ अष्टकम्' है, जो शिखरिणी वृत्त में निबद्ध है। यह अष्टकम् गुण कीर्तन रूप है। इसमें आचार्यश्री महाप्रज्ञ के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व को सुन्दर, सरस एवं सरल रूप में प्रस्तुत किया है।

'आचार्य महाप्रज्ञ अष्टकम्' के अनन्तर शिक्षा सुधा, ग्रंथ को पाँच भागों में विभाजित किया है—

1. आराधना सुधा—इसमें तीर्थंकर, देव, गुरु, धर्म, समता का निरूपण किया है।

2. आचार सुधा के अन्तर्गत अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह तथा प्रवचनमाता का वर्णन किया है। इन सबका पालन करना एवं इनके अनुसार जीवन यापन करना साधु के लिए तो अनिवार्य है, प्रत्येक मानव को भी करणीय है।

3. साधन सुधा-साधु को अहिंसा आदि के पालन के लिए तपादि का आचरण भी अपेक्षित है, जिनको इसमें निरूपित किया है।

4. अनुप्रेक्षा सुधा-जीवन में प्रेक्षा के साथ-साथ अनुप्रेक्षा का महत्त्व है, क्योंकि अनुप्रेक्षा के बिना संकल्प फलीभूत नहीं हो सकते तथा जीवन में परिवर्तन भी नहीं आ सकता।

5. व्यवहार सुधा—इसके अन्तर्गत आचार्यश्री ने शिष्टाचार के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। इस प्रकार यह ग्रंथ भी सबके लिए अत्यन्त उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण है। शिक्षा सुधा का एक श्लोक मननीय है—

नाकृत्या पुरुषो नीचो, नाकृत्या पुरुषो महान्।
प्रकृत्या पुरुषो नीचो, प्रकृत्या पुरुषो महान्।।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि आचार्यश्री महाश्रमणजी का संस्कृत साहित्य को महत्त्वपूर्ण योगदान है।